1

वेद विषय में प्रवेश

प्रस्तावना

भारतीयों के धर्म, आचार, अध्यात्म और वाङ्गय का मूल वेद है। यहाँ सबसे पहले संस्कृत साहित्य क्या है इसका प्रतिपादन करेंगे। उसकी विशेषता और महत्त्व क्या है इन सबका विवेचन इस पाठ में करेंगे। संस्कृत साहित्य के वैदिक वाङ्मय के वैशिष्ट को जगत में कौन नहीं जानता। वैदिक वाङ्मय के विभूति विषय में अतिशयोक्ति नहीं है। यह वाङ्मय बहुत प्राचीन है, सम्पूर्ण पृथिवी से भी इसका परिमाण विशाल है। इसका वैभव अतिशय रहित है, इसके सौन्दर्य गुण का कोई तौल नहीं है। यह वाङ्मय मौलिक और प्राचीन है। यहाँ हमारा हमेशा अभिनिवेश होता है। केवल इतना ही नहीं, अन्य भी बहुत से कारण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में विद्यार्थियों की विशेष रुचि उत्पन्न करते हैं।

संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय दर्शन एवं धर्म का जीवन वेद ही है। वैदिक वाङ्मय अनादि और अपौरुषेय है। यह वाङ्मय मन्त्रब्राह्मणात्मक और वेद के समान आचरण करने वाले सभी शास्त्रों का तात्पर्य है। यह वाङ्मय प्राचीनतम सभी भाषाओं के साहित्यों का मूलभूत है, इस विषय में भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वानों को लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। इस वाङ्मय का अध्ययन अत्यावश्यक है, ऐसा भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वान अनुभव करते हैं। भारतीयों के लिए वैदिक वाङ्मय का इतिहास अनुपम एवं अक्षय धान के समान है। इस कारण भारतीय विद्वान इस विषय के अध्ययन में आनन्द अनुभव करते हैं।

आर्यों की सभ्यता और संस्कृति वेदों के आधार पर ही है। वेदों को न केवल भारतीय विद्वान अपितु विदेशी विद्वान भी श्रद्धा की दृष्टी से देखते हैं। परम् सत्य के अनुसन्धान कर्ता महर्षियों ने जिस महान तत्त्व का अनुभव किया, उसके बोधयिता विद्वान आज भी पृथ्वी पर विराजमान हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। अतिप्राचीन

काल से ही इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के अलौकिक उपाय उनके द्वारा ही जाने जाते हैं। वेदों में ज्ञान-विज्ञान-धर्म-दर्शन-सदाचार-संस्कृति-नैतिक-सामाजिक-राजनैतिक आदि जीवन के उपयोगी विषयों का सन्निवेश है। जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान का प्रवेश नहीं होता वहाँ भी वेद प्रविष्ट होते हैं। स्मृति पुराणादि वेदानुगामी हैं, इसलिए ही स्मृति पुराण आदि ग्रहण योग्य हैं। ये स्मृति पुराण आदि विश्वकोष हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। वेद हमारे श्रेय और प्रेयकर्मों के साधन हैं। प्राचीन धर्म समाज और व्यवहार के विषय में जानने में श्रुति ही समर्थ है। वेद अखिल धर्म के मूलभूत हैं, इसलिए वे हमेशा आदरणीय हैं। स्मृतिकार मनु ने भी कहा है -

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम् तथा वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।' इति।

और भी, महाभाष्यकार पतंजलि ने ब्राह्मण के लिए षडङ्गवेदाध्ययन अनिवार्य है इस कथन का समर्थन करते हुए कहा कि-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'

वेदों में आध्यात्मिक दर्शन का उत्कृष्ट भण्डार है। किन्तु उनके प्रतिपादन की रीति आधुनिकों की प्रतिपादन शैली से सर्वथा भिन्न है। मानव जीवन का दर्शन वेदों में करना चाहिए। विश्व के साहित्य में वेदों का महत्त्व और वैशिष्ट्य स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार आप आगे वेद शब्द का अर्थ और उसके पर्यायवाची शब्दों को जानेंगे। और अन्त में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचार करेंगे।

अखिल ज्ञानराशि का आधार वेद है। वेदों में प्राचीनतम ऋग्वेद है, यह ही विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो वेदों में न हो। वायुयान से लेकर ब्रह्मविद्या पर्यन्त सारा ज्ञान वेदों में है। परन्तु आज-कल वेदों का वैसा अध्ययन नहीं मिलता है। यहाँ पर तो सामान्य स्थूलांश का स्पर्श किया गया है। वेदादि शब्दों के धातु-प्रत्यय आदि के निर्देश पूर्वक निर्वचन आदि भी यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं। यहाँ वेद की विभिन्न शाखाओं का नाम निर्देशपूर्वक तथा वहां विद्यमान मन्त्रों की संख्या भी दी गई है।

वेद में स्वर की महिमा का वर्णन किया गया है। इसलिए स्वर विषय का भी संक्षेप से इस पाठ में वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

- वेदों का वैशिष्ट्य जान पाने में;
- वेदों का क्या महत्त्व है, समस पाने में;
- वैदिक वाङ्मय क्या होता है, इसे जान पाने में;

टिप्पणी

- वैदिक वाङ्मय की विभूति क्या है, यह जान पाने में;
- वेद का शब्दार्थ और वेद के पर्यायवाची शब्दों को जान पाने में;
- वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचारों को ग्रहण कर पाने में;
- वेद का लक्षण जान पाने में।

1.1 वेदों का वैशिष्ट्य

अत्यन्त विशिष्ट और व्यापक है वेदों का महत्त्व। वैदिक वाङ्मय के महत्त्व का सामान्यतया वर्णन करने में लोग प्रायः असमर्थ हैं। यहाँ सर्वाङ्गपूर्ण मानवजीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की भी आलोचना की गयी है। इसलिए वैदिकवाङ्मय में मानवजीवन के सभी उपयोगी विषय अच्छी तरह से विवेचित हैं, यह कथन उचित ही है। यहाँ प्रेय शास्त्र और श्रेय शास्त्र दोनों ही समान भाव से वर्णित हैं। इसलिए यहाँ भोग और मोक्ष की सत्ता का सम्पूर्ण वाङ्मय की अपेक्षा विशिष्ट वर्णन है। यह वैदिकसाहित्य अतिमहत्त्वपूर्ण है। यह सबसे प्राचीन है, ऐसा सब जानते ही हैं। यह व्यापकता और परिमाण में बहुत प्रसिद्ध है। इसका अध्ययन अपरिहार्य और अनिवार्य है। जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह शूद्र होता है ऐसा माना जाता है। जैसे –

'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥'– मनु

भारतीय विचारधारा का यह दृढ विश्वास है कि वेदतत्त्वज्ञ मनुष्य ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है। जैसे–

'वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्रश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥'

अपनी विशिष्टता के कारण वैदिकवाङ्मय का महत्त्व प्रतिष्ठित है। वेदों के ज्ञान के बिना जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए वैदिकवाङ्मय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान की विमल धारा समस्त जैवमण्डल और सभी दिशाओं में वेदों से ही निकलकर बहती है। वेद न केवल भारतीयों के अपितु पृथिवी में रहने वाली समस्त मानवजातियों के हितसाधन हेतु हैं।

हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार से जीवनयापन किया। किन खेलों के द्वारा उन्होंने अपना मनो विनोद किया। उन्होंने किन देवताओं को पूजा। उन्होंने विवाहसम्बन्ध का क्या उद्देश्य निर्धारित किया। और किस विधि के द्वारा वे प्रातः अग्नि में आहुति समर्पित करते थे, इत्यादि विषयों पर हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो उन विषयों का यथार्थ ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर सकते हैं।

वेदों का उपादेयत्व और महत्त्व उनकी भाषादृष्टि से भी अधिक देखा जाता है। इस वैदिकभाषा का महान प्रभाव आधुनिक भाषाविज्ञान में भी दृष्टिगोचर होता है। इस वैदिकभाषा ने भाषाविदों के मध्य विस्तृत प्राचीनभाषाविषयक मतभेदों का निराकरण किया। यदि आज कल के भाषाशास्त्र के पण्डित चाहते हैं कि उनके मत का विषय पूर्णतया परिपक्व हो, तो वे वेदों का अध्ययन करें, वेदज्ञान को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदों का अध्ययन तथा अनुशीलन करके वे विभिन्न भाषाओं में आये हुए पाड्रँ-नाइट-फार्चून आदि पदों का मूलरूप तथा उनके रूपान्तरण का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बहुत से प्रयोजनों के साधक होने के कारण वस्तुतः वेद परममहत्त्वभाजक ग्रन्थ हैं।

1.2 वेदों का महत्त्व

ऋषियों ने वेदों को बनाया ऐसा पाश्चात्य पण्डित मानते हैं। वेद शब्दराशि हैं ऐसी पाश्चात्य पण्डितों की आधिभौतिक दृष्टि है। इसलिए वे शब्द राशि समूहात्मक वेद सामान्यग्रन्थ ही है ऐसा मानते हैं। परन्तु वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको शब्दराशी तथा ऋषिकृत नहीं मानते। भारतीय विद्वानों के मत में ऋषि वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं कर्ता नहीं। अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने अपनी दिव्य प्रतिभा से मन्त्रों के दर्शन किये। उन मन्त्रराशियों का प्रकाश उनकी बुद्धी में आविर्भूत हुआ। 'ऋषति पश्यति इति ऋषिः' इस व्युत्पत्ति से प्राप्त 'ऋषि' इस पद का अर्थ 'मन्त्रद्रष्टा' है। ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सुत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। और निरुद्र में विद्यमान- 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्।' इत्यादि पङ्क्तियाँ ऋषि के मन्त्रद्रष्टृत्व का समर्थन करती हैं।

प्रधान रूप से वेद दो प्रकार का है- मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप। मन्त्रों का समुदाय ही संहिताशब्द से जाना जाता है। ब्राह्मणरूप वेदभाग तो संहिताभाग का व्याख्यारूप ही है। और यह ब्राह्मणभाग यज्ञ के स्वरुप का बोधक है ऐसा कहा जाता है। ब्राह्मणग्रन्थ भी तीन प्रकार से विभक्त होता है- ब्राह्मण, आरण्यक,और उपनिषत्। यज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादक ब्राह्मणभाग है। और अरण्य में पढे गये जो यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करते हैं वे वेदभाग आरण्यक कहलाते हैं। उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप के बोधक तथा मोक्ष के साधान हैं, यही भाग वेद का अन्तरूप तथा साररूप होने के कारण वेदान्त कहलाता है। ब्राह्मणभाग गृहस्थों के लिए उपयोगी है, आरण्यकभाग वानप्रस्थों के लिए उपयोगी है, उपनिषद्भाग संन्यस्तों अथवा सन्यासियों के लिए उपयोगी है, यह भी कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. द्विज वेद को न पढकर अन्य कर्म करता है तो क्या होता है?
2. कौन ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है?

टिप्पणी

3. वेदशास्त्रार्थ....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
4. योऽनधीत्य.....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
5. पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार वेदों की रचना किसने की?
6. भारतीय विद्वानों के मतानुसार ऋषि कौन होते हैं?
7. ऋषि शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?
8. ऋषि शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न होता है?
9. निरुक्त की कौनसी पङ्क्ति ऋषि शब्द का मन्त्र द्रष्टा अर्थ होता है, इसका समर्थन करती है।
10. वेद के प्रधान विभाग कौन कौन से होते हैं?
11. मन्त्रसमुदाय का दूसरा क्या नाम है?
12. ब्राह्मणरूप वेदभाग कौनसा है?
13. ब्राह्मणग्रन्थ कितनी प्रकार से विभक्त होते हैं। और वे कौन कौन हैं?
14. ब्राह्मण किसका प्रतिपादक है?
15. आरण्यक क्या होता है?
16. उपनिषद् क्या होता है?
17. ब्राह्मणभागों में कौन कौन से भाग किस किसके उपयोग के लिए होते हैं?

1.3 वैदिक वाङ्मय

भारतीय ज्ञान का प्रवाह गङ्गा के प्रवाह की तरह है। और उसके स्रोत वेद ही हैं। वेद के तुल्य दूसरा कोई भी दीप्तपुंज ग्रन्थ नहीं है। वेद की प्रभा से न केवल वेद स्वयं प्रकाशित होता है अपितु उसकी प्रभा से समस्त भारतीयवाङ्मय प्रकाशित होता है। वेद शब्द से जैसे चार मन्त्रों की संहिताओं का ग्रहण होता है वैसे ही वैदिक शब्द से वेदोत्तरकालिक समस्त वैदिकवाङ्मय का बोध होता है। वैदिक शब्द तो वेदविषयक बहुविधा ज्ञान की सामग्री का सूचक तथा द्योतक है। वेदविषयक सामग्री से यहाँ छः वेद:ङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद् आदि का बोध होता है। वेदों से भिन्न होते हुए भी ये वैदिकग्रन्थ वेदोद्धृत ही हैं। वैदिकवाङ्मय के अन्तर्गत ही ये छ:वेदाङ्ग आदि ग्रन्थ आते हैं।

यद्यपि साहित्य शब्द वर्तमान में वाङ्मय अर्थ में प्रयुक्त होता है जिस अर्थ में 'लिटरेचर'-शब्द विदेशियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। तथापि यहाँ वेद शब्द का प्रयोग मन्त्र और ब्राह्मण

के निमित्त है। आपस्तम्ब द्वारा कहा गया है- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। जिससे यज्ञों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है, और देवताओं का स्तुतिविधान जहाँ उल्लिखित है वह मनन करने के कारण मन्त्र कहलाता है। ब्राह्मण पद तो ग्रन्थ विशेष वाचक है। यज्ञों के विविध क्रियाकलापों के प्रतिपादक ग्रन्थ 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। 'ब्राह्मण' इस पद का अर्थ- 'वर्धन विस्तार तथा वितान एवं यज्ञ' हैं। ब्राह्मण भी तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग 'ब्राह्मण', दूसरा भाग 'आरण्यक', और तीसरा भाग 'उपनिषद्' कहा जाता है।

वेद स्वरूप भेद से तीन प्रकार का होता है- ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। जहाँ अर्थ के कारण पाद व्यवस्था है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है इस पद के द्वारा व्यवहार किया जाता है। 'यजु' शब्द यज्-धातु से उसि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिस वेद में यज्ञ याग आदि क्रियाकलापों वाले मन्त्रों का सन्निवेश है उसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। जहाँ गीतिरूप मन्त्र होते हैं वह उपासनाकाण्ड परक वेद 'सामवेद' है। मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं इसलिए वेद 'त्रयी' इस नाम से प्रसिद्ध हैं।

मन्त्रों का समूह 'संहिता' इस नाम से जाना जाता है। यज्ञानुष्ठान को दृष्टी में रखकर वेदव्यास ने विभिन्न ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किया। मन्त्रों की संहिताओं का सङ्कलन चार प्रकार से किया गया, इसलिए संहिता: चार हैं। ऋक्संहिता, यजु:संहिता, सामसंहिता, अथर्वसंहिता। इसलिए वेद चार चार हैं।

अतिव्यापक और विस्तृत है हमारा वैदिकवाङ्मय। और यह सर्वाङ्गपूर्ण है, क्योंकि यहाँ मानव जीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषार्थ विवेचित हैं। यह वाङ्मय सुप्राचीन, समग्रपृथिवीव्यापि, परिमाण से दुरूछेद्य, सौन्दर्य और उत्कर्ष से अनन्यतुल्य है। महान मौलिक और पुरातन है यह वैदिकवाङ्मय। अत: यहाँ हमारे अभिनिवेश का सर्वथा समर्थन किया जाता है। केवल इतना ही नहीं अपितु अन्य कारणों से भी वैदिकवाङ्मय के अध्ययन में पण्डित जिज्ञासू तथा छात्रों की रूचि उत्पन्न होती है।

पाठगत प्रश्न 1.2

18. वेद विषयक सामग्री शब्द से किसका बोध होता है?
19. साहित्यशब्द वर्तमान में किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
20. वेद के विषय में आपस्तम्ब में क्या कहा गया है?
21. मन्त्र शब्द का क्या अर्थ है?
22. ब्राह्मण शब्द का क्या अर्थ है?
23. वेद स्वरूप भेद से कितने प्रकार का है? और वे कौन कौन से हैं?

24. ऋक् क्या है? और ऋग्वेद क्या है?

25. यजुर्वेद क्या है?

26. सामवेद क्या है?

27. वेद का त्रयी नाम किसलिए रखा गया?

28. ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किसने किया।

29. संहिताओं की संख्या बताओ।

30. वैदिकवाङ्मय में हमारा अभिनिवेश कैसे होता है।

1.4 वैदिक वाङ्मय की विभूति

वैदिकवाङ्मय का अध्ययन ऐतिहासिकों की परमप्रीति के लिए कल्पित है। और यह वाङ्मय न केवल विशाल भारत के लोगों की अपितु सहस्रों वर्षों से भी पहले से स्थित यहाँ के इतिहास की आज तक रक्षा कर रहा है, इसके अलावा भी तिब्बत-जापान-चीन-कोरिया आदि देशों में, तथा लङ्काद्वीप-मलयद्वीप, और पश्चिम में रहने वाले लोगों की बौद्धिक-प्रवृत्तियों में भी प्राचीनकाल में इसका बहुत बड़ा प्रभाव और विस्तार था तथा प्रत्येक युग में इस वाङ्मय का प्रभाव परिलक्षित होता है।

पूर्व में तमिल-तेलुगु-मलयालम-कनाडी इन चार भाषा-वर्गों को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। पश्चिम में प्रायः सभी यूरोपीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से निकली हुई हैं। सभी धर्मों की उत्पत्ति का परिचय जितना इस साहित्य के आश्रय से प्राप्त होता है, उतना अन्य साहित्य के आश्रय से प्राप्त नहीं होता है।

धर्म और दर्शन इन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य है। मैकडोनल महोदय ने कहा कि- 'भारोपीय भाषी भाषित लोगों में केवल भारतीयों के द्वारा ही केवल वैदिकधर्म नामक महान् राष्ट्रीय धर्म, और इसका प्रतिपक्षी बौद्धधर्म नामक महान् सार्वभौमधार्म का निर्माण किया गया।

उपज्ञासमृद्ध वैदिकवाङ्मय अन्य वाङ्मयों से विशेष है। 400 ई.पू. में भारतवर्ष पर यवनों का आक्रमण हुआ। उससे पहले ही आर्यसभ्यता एवं हमारी वैदिकवाङ्मयविभूति प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। और उसके बाद अन्य कई देशों के आक्रमण होने के कारण संसर्ग दोष उत्पन्न हो गया। मेकडोनल महोदय ने कहा कि-'सभी सनातन साहित्यों के मध्य वैदिकवाङ्मय ने मौलिकता के मूल्य एवं सौन्दर्यगुण में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किया। मानव प्रकृति विकाशानुशीलन की प्रधानसाधानता तो वेदों में अन्य वाङ्मयों से निःसंशय उत्कृष्ट ही है'।

भारतीय साहित्य का इतिहास वैदिककाल तथा लौकिक संस्कृतकाल नामक दो कालों में

विभक्त है। पाणिनि से पूर्व का प्रथम काल, तथा बाद का द्वितीय काल गिना जाता है। आदि काल ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यकग्रन्थ, उपनिषद्, और कल्प सारस्वत माने जाते हैं। इस वैदिकवाङ्मय मंप आर्यसभ्यता का विलक्षण और निरन्तर गमन देखा जाता है। प्रार्थना, उपासना, मन्त्रजप, जननी के उदर में शरीरग्रहण से लेकर शरीरत्याग पर्यन्त आर्यजीवन को विशेषित करने वाले जो सोलह संस्कार, अरणीयों से हव्यवाह का जनन, श्रौतसूत्र गृह्यसूत्र आदि बहुत सी विधियाँ ईसा के जन्म के पूर्व से आज तक प्रचलित हैं।

यूरोपीय संस्कृति और दर्शनों का जो विकास हुआ उसके ज्ञानार्थ वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अवश्य करना चाहिए तथा विण्टरनिट्ज महोदय ने कहा कि–'यदि हमारी स्वसंस्कृति का उपक्रम प्रक्रम समाप्त हो जाए, और यदि हमारी प्राचीन भारोपीय संस्कृति जानने की इच्छा हो तब जहाँ भारोपीय लोगों का वर्षिष्ठ वाङ्मय सुरक्षित हो ऐसा स्थान भारतवर्ष ही होगा, ऐसी हमारी मानना है।

भारतीयों को विशेष रूप से इस वाङ्मय के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए। भारतीयों के प्राचीन वाङ्मय और संस्कृति का श्रेष्ठ दर्पण वैदिक वाङ्मय है। और भी आधुनिक हिन्दी–पंजाबी–बंगला–ओडिया–गुजराती–मराठी–राजस्थानी–बिहारी–असमिया आदि उत्तर भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की जननी है यह भाषा। दक्षिणभारत में भी जो तमिल–तेलगु–मलयालम–कन्नड़ आदि आधुनिक भाषाएं हैं वे भी वैदिकवाङ्मय से बहुत प्रभावित हैं। जैसे धागे में मोती ग्रंथित होते हैं वैसे ही इसे वैदिकवाङ्मय में सभी भारतीय भाषाएं ग्रंथित हैं। वैदिकवाङ्मय के ज्ञान के बिना आधुनिक भाषाओं का सही प्रकार से ज्ञान असम्भव है।

'मैं कौन हूँ। कहाँ से आया। मुझे सुखप्राप्ति कैसे होगी और दु:ख का निराकरण कैसे होगा।' ये मानवों की अध्यात्म विषयक सनातन जिज्ञासाएं वैदिक वाङ्मय में आलोचित हैं। **अत: वैदिकवाङ्मय का इतिहास संक्षेप से कहा गया।**

पाठगत प्रश्न 1.3

31. वैदिकवाङ्मय का अध्ययन किसलिए अपरिहार्य है?

32. वैदिकसाहित्य का इतिहासकाल कितनी प्रकार से विभक्त है?

33. कौन–सी वैदिकवाङ्मय से भाषा बहुत प्रभावित है?

34. वैदिकवाङ्मय में कैसी जिज्ञासा आलोचित है?

1.5 वेद शब्द का अर्थ

'विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यैस्ते वेदा:' ऐसा बह्वृक्प्रातिशाख्य में कहा गया है। यदि वेदों के स्वरूप के विषय में मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो तद्विषयक ज्ञान वेदों में ही

टिप्पणी

प्राप्त कर सकते हैं। सायण ने तो 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' ऐसा कहा। इष्टप्राप्तेः अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति सः 'वेदः' **यह भाष्यभूमिका में सायण ने कहा।** उसका प्रमाण भी दिया गया है-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'' इति।

आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सब शब्द वेद शब्द के पर्यायवाची हैं। ज्ञानार्थक वेद शब्द विद्-धातू से घञ्प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के चुरादिप्रकरण में तो चारों अर्थों में विद्-धातु का प्रयोग है। जैसेः-

''सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्यनम्शेष्विदं क्रमात्।'' इति।

उद्र अर्थों के वाचक होने से विद्-धातु से वेद शब्द निष्पन्न है। सत्तार्थक होने से विद्-धातु से घञ्प्रत्यय होने पर 'वेद' पद का अर्थ होता है- 'विद्यते सत्तां गृह्णाति वस्तु अनेन इति वेदः।' ज्ञानार्थक होने पर विद्-धातु घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' पद का अर्थ है- 'विदन्त्येभिः धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेदः।' विचारार्थक होने पर विद्-धातु से अच्-प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द का अर्थ -'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति। लाभार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'विदन्ते स्वरूपं लभन्ते वस्तु अनेनेति वेदः।' ऋग्वेदभाष्यभूमिका में -'विदन्ति जानन्ति, विद्यते भवन्ति, विन्ते विचारयति, विदन्ते लभन्ते सर्वे मनुष्याः सत्त्वविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः' इति। आपस्तम्बानुसार- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्' इति।

वेद के स्वरूप के विषय में पश्चिमी विद्वान वेदों को ऋषिप्रणीत मानते है। इतना ही, नहीं सांसारिक उन शब्दराशियों को सामान्य ग्रन्थ ही मानते हैं। परिणामस्वरूप जो ऋषि जिस मन्त्रविशेष से सम्बद्ध है वह उसका कर्ता हुआ। ऋग्वेद में भी कर्तृत्वपद का स्पष्टतया उल्लेख प्राप्त होता है- 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीयः (ऋ0 7।35।14), 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः' (ऋ0 7।37।4), 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' (ऋ0 7।97।9) अनेक मन्त्रों में 'ऋषिप्रणीता एवं वेदमन्त्राः सन्ति' इस कथन का उल्लेख स्पष्टतया प्रतीत होता है। भाषाशास्त्रदृष्टि से मण्डित, आध्यात्मिक भावना से विहीन कतिपय आधुनिक भारतीय पण्डित भी 'ऋषय एव वैदिकमन्त्रणां कर्त्तारः सन्ति' ऐसा मानते हैं और कुछ वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको ऋषिप्रणीत नहीं मानते हैं। उनका मत यह है कि ऋषि वैदिकमन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्त्ता। असङ्ख्य वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने दिव्य प्रभा से मन्त्रों का दर्शन किया (देखें- ऋ0 7।33,7।13 मन्त्रों में)। कुछ मन्त्रों में मुनि वसिष्ठ द्वारा दिये गये अलौकिक ज्ञान का उल्लेख है (ऋ0 7।87।4, 7।88।4), ऋग्वेद में अनेक जगह वाणी की भव्य स्तुति दृष्टिगोचर होती है। मन्त्रों के प्रकाश का उनकी बुद्धि में आविर्भाव हुआ। जैसे-

टिप्पणी

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्। ऋ0 10।71।3

ऋषिदृष्ट प्रार्थना के अलौकिक फल का निर्देश भी वेद में ही उपलब्ध है (ऋ0 3।53।12, 7।33।3) मन्त्रों में ही वैदिक वाणी की नित्यता के प्रमाण प्राप्त होते हैं, उन प्रमाणों में 'वाचा विरूपनित्यता' (ऋ0 8।75।6) मुख्य है। 'ऋषि' इस पद की व्युत्पत्ति के आधार पर (ऋषति पश्यति इति ऋषिः) अर्थ ही मन्त्रद्रष्टा है। ये ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' औणादिक सूत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ। निरुक्त में च विद्यमान होने से 'तद्येनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्....' इत्यादि पङ्क्तयः ऋषियों का मन्त्रद्रष्टृत्व प्रतिपादित होता है। इसप्रकार ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्त्ता।

'ऋषिर्मन्त्रद्रष्टा। ऋषियों ने गत्यर्थत्व र्जानार्थत्व से मन्त्र को देखा।' ('श्वेतवनवासिरचितवृत्तौ' उणादिसूत्रम् 4।129 देखे) और निरुक्त में भी 'तद्येनांस्तपस्यमानां ब्राह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते ऋषिदर्शनात्। मन्त्रान् ददर्श इत्यौपमन्यवः।'

न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है। परन्तु सांख्य-वेदान्त-मीमांसा के मत में वेद अपौरुषेय है। ये दर्शन उनका नित्यत्व स्वीकार करते हैं। प्रायः स्मृति पुराणों में भी वेद सम्बन्धित उनके जैसी ही भावना प्राप्त होती है, जैसे मीमांसा में प्रकाशित है। मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं। उन्होंने कहा-

'पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥' इति

विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करनेपर वेदशब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतः यहां विद्-धातु ज्ञानार्थक है। ज्ञायते का अर्थ वेद इस भाव में वेद शब्द की व्युत्पत्ति मानकर वेद शब्द ज्ञानवाची है ऐसा व्यवहार होता है। किन्तु वेद शब्द ग्रन्थवाचक हो तो ''विद्यते ज्ञायते अनेन इति वेदः'' इस प्रकार करण में वेद शब्द की व्युत्पत्ति जाननी चाहिए। जिस ग्रन्थ के द्वारा ज्ञान होता है या जो ज्ञान का साधन है वो ग्रन्थ वेद है। **और न ही अन्य** ज्ञानप्रतिपादक ग्रन्थ वेद है, किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के विषय में अलौकिक ज्ञानराशि के प्रतिपादक ग्रन्थ ही वेद हैं। उसके द्वारा अतीन्द्रियज्ञान प्रतिपादक ग्रन्थ के रूप में वेद शब्द रूढ़ है। विद् धातु के चार अर्थ हैं। और भी विद्-धातु चातुरर्थिक विषय में अन्य एक कारिका-

वेत्ति वेद विद ज्ञाने विन्ते विद विचारणे।
विद्यते विद सत्तायां लाभे विन्दति विन्दते॥ इति

ज्ञानार्थक 'विद ज्ञाने' इति अदादिगणीय विद् धातु से ''विदन्ति जानन्ति एभिः धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा'' इस व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। विचारार्थक से 'विद विचारणे' इति रुधादिक होने से विद् धातु ''विन्ते विचारयति धर्मादिकमनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। सत्तार्थक 'विद सत्तायाम्' दिवादि होने से विद् धातु ''विद्यते सत्तावद् भवति वस्तु अनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द की उत्पत्ति होती है। लाभार्थक 'विदलृ लाभे' इ तुदादि होने से विद् धातु ''विन्दते विन्दति वा स्वरूपं ब्रह्मणः अनेनेति'' व्युत्पत्ति

टिप्पणी

से वेदशब्द उत्पन्न होता है। कुछ तो 'विद् चेतानाख्याननिवासेषु' चुरादिगणीय धातु से वेदशब्द निष्पादित मानते है। उनके मत में अर्थसंङ्गति इसप्रकार है - 1. चेत्यते ज्ञायते धर्मब्रह्मतत्त्वं येन स इति 2. आख्यायते महतां चरितज्ञातं येन स इति 3. निवसति सर्वदेवगणः पाठकशरीरे येनेति। और मनु ने कहा ''वदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्'' इति। सायण ने भी कहा है - 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद' इति।

1.6 वेद शब्द के पर्यायवाची

प्राचीनकाल में गुरुशिष्यों में श्रुतिपरम्परा द्वारा वेदज्ञान धारण कियाजाता था। इसीलिए वेद को श्रुति भी कहते है। उसीको ''गुरुमुखोच्चारणनुच्चारणं'' वेद ऐसा कहते है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीनों वेद त्रयी के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि अथर्ववेद को भी वेद स्वीकार किया गया तो भी इसका सामादि तीनों के अंतर्गत आने वाले यागों के प्रयोग विशेष में अभाव के कारण पृथक् उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु इसका वेदत्व अक्षत है। तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है कि- 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस'। प्रधान याग सम्बन्धि अभावों में भी अभिचार आदि यागों में शान्ति और पौष्टिक आदि कर्मों में अथर्ववेद के मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। पुरुषार्थों में मोक्ष ही इसका मुख्य वर्णन अथर्ववेद में है, और मोक्ष उपाय ही केवल इसका वेदत्व नही है, अपितु ''अयमात्मा ब्रह्मेति'' महावाक्य माण्डूक्य आदि के आत्म ज्ञान उपदेश का उपनिषदो में इस गुरु के गुरुत्व होने में अन्य वेदो को अलग करता है, ऐसा वेदान्तियों का मत है।

यह सब छोडकर भी आम्नाय, आगम, अनुश्रव छन्द ये वेद के पर्यायवाची हैं। जो सही रूप से जीवन जीने का वर्णन करे वह आम्नाय वेद कहलाता है। प्राचीन काल में पाठक गुरुमुख उच्चारण के पीछे अनुच्चारण द्वारा श्रवण कर और कण्ठस्थ कर वेदाभ्यास किया करते थे। इसलिए ही वेद आम्नाय इस नाम से जाना जाता है।

वेद के अन्य नाम आगम अथवा निगम है। तथा हि वेदार्थ में आगम निगम शब्द का प्रयोग बहुत जगह देखा जाता है। और पतंजलि ने कहा है रक्षा उह आगम लघु असन्देह मुख्य प्रयोजन है। श्रीधारस्वामी ने भागवत व्याख्या में निगम को ही वेद कहा है, वह ही कल्पवृक्ष सभी पुरुषार्थ के उपाय है। स्वाध्याय भी वेद का पर्यायवाची है। और वेदपाठी को स्वाध्याय (वेद) पढ़ना चाहिए। छन्दांसि छादनात् इस व्युत्पति से छन्द-शब्द वेद मन्त्र वाचक है।

पाठगत प्रश्न 1.4

35. बह्वृक्प्रातिशाख्य में क्या कहा गया है?

टिप्पणी

36. सायण ने भाष्यभूमिका में वेद शब्द के विषय में क्या कहा है?
37. न्याय वैशेषिक के मत में वेद कैसा है?
38. किन के मत में वेद अपौरुषेय हैं?
39. विद्-धातू के चार अर्थ बताओ?
40. विचारार्थक विद्-धातू से क्या रूप बनता है?
41. मनु ने वेद के विषय में क्या कहा है?
42. सायण के मत में वेद का लक्षण बताओ?
43. भाष्यभूमिका में वेद का क्या लक्षण किया गया है?
44. वेद शब्द के पर्यायवाची शब्द बताओ?
45. वेद शब्द किस धातु से बना?
46. वेद शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
47. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदि के चुरादिप्रकरण में किन अर्थों में विद्-धातू का प्रयोग किया गया। और वे अर्थ कौन-कौन से हैं?
48. ज्ञानार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए 'वेद' शब्द का क्या अर्थ है?
49. विचारार्थक विद्-धातू से अच्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए वेद शब्द का क्या अर्थ है?
50. वेद ऋषियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं ऐसा कौन मानते हैं?
51. ऋषि शब्द का क्या अर्थ है?
52. ऋषि शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
53. न्याय और वैशेषिक के मत में वेद कैसे होते हैं?
54. मनु के मत में वेद कैसे हैं?

1.7 वेद पौरुषेय या अपौरुषेय पर विचार

मीमासंक सांख्य वैदान्तिक नैयायिक मत - वेद अपौरुषेय है ऐसा वेदान्ती स्वीकार करते है। मीमांसक भी वेदों के अपौरुषेयत्व को मानते है। अत: कोई भी मरणधर्मा वेद का कर्ता नहीं है। और ईश्वर भी उसका कारक नहीं है। वह स्मर्ता ही है। इसीलिए

आम्नात को इसका महान कर्ता माना क्योंकि ये ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद है। भ्रम-प्रमादादि-पुरुषदोष से रहित होने से वेद अपौरुषेय है। भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा और साधानपटुता ये पुरुषदोष है। प्रत्येक कल्प में परमेश्वर वेद का बार बार उपदेश करता हैं।

इसलिये पराशरसंहिता में कहा है-

''न कश्चिद् वेदकर्तास्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः।
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे स्मारका न तु कारकाः॥'' इति

ऋषि भी वेदकर्ता नही है। वे भी तपस्या से वेदमन्त्रों का दर्शनकर लोक व्यवहार को जानकर लोक में प्रचार करते है। इसीलिए कहा है कि-

''युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥'' इति

उनका यह अभिप्राय है कि वेद अनादि हैं। उनकी उत्पत्ति कब हुई और, किस प्रकार हुई ये कोई नही जनता है। अनादि होने से वेदों की अनन्तता भी सिद्ध है। अनादि वेद ही अनाद्यनन्त ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। ब्रह्मविषय में या पारलौकिक विषयों के विषय में, मोक्षादि का वेद ही प्रमाण है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म'' यह श्रुति सृष्टी के कारणरूप का प्रतिपादन करती है। शास्त्रों में नित्यता से ब्रह्मसूत्र ब्रह्म के विषय में ब्रह्मशब्दवाच्यभूत वेद ही प्रमाण हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं। वेद की अपौरुषेयता कहने वाले भी मानते है की सृष्टि के आदि में भगवान् पूर्वकल्प के समान पुनः वेद को बार-बार ब्रह्म को उपदेश देते हैं। मीमांसक ऐसा मानते हैं कि शब्द नित्य है। शब्द का नित्यत्व केवल उच्चारण द्वारा प्रकट होता है न कि निर्मीत होता है। वेदों का शब्दात्मक होने से नित्यत्व है। और नित्यत्व होने से अपौरुषेयत्व है-

सांख्य और वैदान्तिक वेद के संकेत अक्षरों की नित्यता को अस्वीकार करते हुए भी प्रवाह को नित्य मानते है। नैयायिक विद्वान् मानते है कि वेद तो पौरुषेय है, महाभारत आदि वाक्य के समान वेद भी पुरुषबुद्धिपूर्वक रचित है न कि जड़ आदि वेदकर्ता है। वेद भ्रम-प्रमादादि रहित है और ईश्वर भी अतः ईश्वर ही वेदकर्ता है इसीलिए वेद अपौरुषेय है। ईश्वरप्रणीत होने से ही वेद की प्रामाणिकता सिद्ध है। शब्दों के अनित्यत्व से वेदों की भी अनित्यता सिद्ध होतीहै। इस प्रकार वेदों का कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर ही है। सर्वज्ञ ईश्वर ही सकल प्रकार से ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वेद रचकर ब्राह्मणों को दिया। वेद उसकी सहज निर्दिष्टी है वेद वाक्य का अभिप्राय है कि, जिस प्रकार से जीव विना प्रयास के निःश्वसन करता है, उसके समस्त कार्य ही सहजगतिसे होते हैं। उसी प्रकार सर्वज्ञता से विना प्रयास के ही वेदों कानिर्माण या प्रतिपादन करता है।

आधुनिकमत - अर्वाचीन वैदेशिक प्रभाव से प्रभावित विचारका प्रतिपादन करते हैं कि

वेद ऋषिकृत है। वे कहते है कि जिस ऋषि का सम्बन्ध जिस मन्त्र के साथ है वह ही ऋषि उस मन्त्र का प्रणेता है। 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीयः', 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः' 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' इत्यादि वाक्यों द्वारा प्रतीत होता है कि वेद ऋषिकृत ही है।

किन्तु भारतीय मनीषियों का अभिप्राय है कि ऋषि मन्त्रकर्ता नहीं है, अपितु वे अपौरुषेय वेदमन्त्रों के साक्षात्कर्ता है। मन्त्र द्रष्टृत्व रूप ही उनका ऋषित्व है और वेद अपौरुषेय होने से पौरुषेयकृति में उत्पन्न भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, साधानपटुता दोष से रहित है।

1.8 वेदकालक्षण

आपस्तम्ब ने वेद लक्षण को उल्लिखित करते हुए मन्त्र ब्राह्मण को वेद नाम से जाना जाता है। सायण ने भी ऋग्वेद भाष्य में उदृत वेदलक्षण के बारे में कहा है मन्त्र ब्राह्मण की शब्द राशि ही वेद है। मन्त्र मनन करने से। जिससे कर्म उसके उपकरण देवता आदि का ज्ञान होता है वह मन्त्र है। मन्त्रों के द्वारा हि आध्यात्मिक आधिदैविक आधियाज्ञिक विषय का बोध अच्छी प्रकार से होता है। इसलिए मन्त्रो का मन्त्रत्व है। अथवा जिनके मनन से आपत्तियों से मनुष्य रक्षा को प्राप्त करता है वे मन्त्र है। चारो वेदों की संहिता ही मन्त्र पद वाच्य है। मन्त्र ही संहिता है। वैदिक संहिता छन्दोबद्ध पद रचनात्मक होती है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो हमेशा गद्यात्मक ही होते है। वैदिक संहिता एक और अखण्ड है। कहा भी जाता है की कृष्णद्वैपायनव्यास ने ही वेद को चार भागों में विभक्त कर संहिता सामसंहिता, यजुःसंहिता, अथर्वसंहिता नाम दिए।

जिससे प्रसन्न और स्तुति की जाए वह ऋक्। जैमिनि द्वारा ऋग्लक्षणकिया गया है 'तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था' इति। ऋग्वेद ही सर्वप्रथम रचित हुआ था। अत एव ऋक्मन्त्रों का अभिधान हुआ है। अन्य वेदों का जो विधान है वह शिथिल क्रम में हुआ / ऋग्वेद में जो विधान है वह प्रबल होता है। और भी आम्नात तैत्तिरीयसंहिता में 'यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्, यदृचा तद् दृढमिशति। सामवेद का लक्षण 'गीतिषु सामाख्या' है। सामवेद गीतिपरक मन्त्र हैं। यजु का लक्षण 'शेषे यजुःशब्द' है। यजुर्वेद में ही सभी यज्ञ आदि विधानों का वर्णन है- 'अनियताक्षरावसानो यजुः' यह यजुर्वेद का लक्षण किया है। जहां अक्षरों की संख्या नियत या निश्चित नहीं है वो यजुर्वेद है। यजुर्मन्त्र भी गद्यात्मक होते है - अतः ऋक्-सामविलक्षण गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह यजुर्वेद है। शुक्लयजुर्वेद, कृष्णयजुर्वेद यजुर्वेद के दो भाग है। शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के मन्त्र संकलित है- कृष्णशाखा में मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रण है- अथर्व मन्त्रों का कोई विशेष नहीं है- वेदान्त मन्त्र यहां मुख्यतः समाविष्ट हैं। अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।

प्राचीनकाल में महर्षि वैशम्पायन ब्रह्महत्या पाप से पातक होने पर शिष्यों को बुलाकर कहा आप सब में से कौन गुरू के पापक्षालन के लिए तप आचरण करना चाहता है। याज्ञवल्क्य ने कहा 'भगवन, हीनविद्या से युक्त अन्य शिष्यों के तप द्वारा पापक्षालन दुष्कर

टिप्पणी

है। मेरे अकेला ही तप से तुम्हारे पाप नष्ट कर सकता हूं। 'शिष्य के अविनय से क्रुद्ध गुरु ने दी गई विद्या का प्रत्यर्पणपूर्वकं आश्रम त्याग का आदेश दे दिया। याज्ञवल्क्य भी सपद्य अधीत वेदविद्या का वमन कर देते हैं। तब गुरु की आज्ञा से अन्य शिष्यों ने तितर पक्षी-कीट रूप में उद्गीर्ण विद्या स्वीकार की। अत एव उनके द्वारा प्रचारित वह वेदसंहिता तैत्तिरीय संहिता इस नाम से जानी जाती है। याज्ञवल्क्य ने तब सूर्य से वेद विद्या प्राप्त करने के लिए सवितृदेव को स्तवन द्वारा प्रसन्न किया। सूर्य देव ने भी वाजि के रूप में याज्ञवल्क्य को उपदेश किया। वाजि नाम सूर्यरश्मी का है, सनिशब्द धनवाची है। सूर्यकिरण से यह वेदधन प्राप्त किया तब वह वाजसनेय संहिता नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई- उद्गीर्ण वस्तु तामसिक होने से तैत्तिरीय संहिता कृष्णयजुर्वेद द्वारा कही गई है। सूर्य सहायता से जो वेद विद्या सीखी गई थी वह सात्त्विक व शुक्लत्व है।

वेदवृक्ष की बहुत शाखा है। गुरु शिष्य परम्परा में वेदाध्ययन में स्वराद्युच्चारण शैली भेद दिखाई देता है- उन्ही से वेदशाखा की उत्पत्ति हुई। इतना ही नहीं ऋग्वेद में चौबीस ऋक्शाखा समुपलब्ध होती है - शाकल-मुद्गल-गालव-वास्कलादि। उनके मध्य में शाकल-वास्कलशाखा आज भी समुपलब्ध होती है। जैमिनि-सुमन्तु-सुकर्म अनेक शाखा सामवेद की प्रसिद्ध है। त्वरक-कठादि कृष्ण की। जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादि शाखा शुक्लयजुर्वेद में प्रसिद्ध है। अथर्ववेद की पैप्पलाद-प्रभृतिशाखा प्रसिद्ध है। वस्तुतः किस वेद की कितनी शाखा है ऐसा विचारण अतीव कठिन है। महाभाष्य पस्पशाह्निक में भाष्यकार पतंजलि ने कहा - 'एकविंशतिधा वा, एकशतमधवर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेद' इति।

अतः शाखा शब्द से संहिताभेद नहीं होता है। किन्तु अध्ययनभेद होता है। इसीलिए वेदज्ञ सत्यव्रतसामाश्रमवासी ने कहा 'शाखा भेद केवल अध्ययनभेद है न की ग्रन्थभेद' एक एक वेद की अनेक शाखा होने पर भी तात्त्विकभेद का अभाव है।

इसप्रकार यह क्रम से समस्त मन्त्र पदों का उच्चारण होता है, वह माला पाठ है। रेखा पाठ में भी कंही यथाक्रम कंही विपरीत क्रम कंही दो पदों का कंही तीन पदों का एकत्र पाठ होता है। जटापाठ का ही अनुरूप दिखता है शिखापाठ में। यहा मध्य- मध्य में तृतीय षष्ठ नवम चरण में तीन तीन पद होते हैं- ध्वजपाठ में भी पहले तो क्रमपाठ के समान छः पदों का उच्चारण कर वापस उन्ही छः पदों का विपरीत उच्चारण करते है- जहां क्रम पाठ के दो-दो पद यथाक्रम तीन-तीन बार उच्चारित होते हैं- द्वितीय बार में तो व्युत्क्रम पाठ होता है, वह दण्ड पाठ है। रथ पाठ में भी क्रम पाठ का और उसके विपरीत क्रम का सङ्गम दिखता है। घन पाठ भी विलक्षण और क्लिष्ट होता है। वहां अनुलोम-विलोम क्रम से पदों की बार-बार आवृति उत्पन्न होती है। ये एकादश पाठ निर्भुज-प्रतृणभेद से दो है- मूल का अविकृत पाठ निर्भुज है। संहितापाठ ही निर्भुजपाठ है- उसको छोडकर अन्य विकृतपाठ प्रतृणा कहलाते है।

वेद के विविधा विभाग आगे दिखाएगे।

पाठगत प्रश्न 1.5

55. न्यायमत में वेद पौरुषेय है या नहीं?

56. मीमांसामत में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय?

57. वेद की प्रवाहनित्यता कौन मानते हैं?

58. निर्भुजपाठ क्या है?

59. शुक्लयजुर्वेद में शाखा प्रसिद्ध है?

60. वाज नाम किसका है? सनि शब्द का अर्थ क्या है?

61. ऋक्शब्द की क्या व्युत्पत्ति है?

62. किस वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है?

63. अभिचारादि कर्म में किस प्रकार के मन्त्रों का उपयोग होता है?

64. जैमिनि द्वारा ऋक्लक्षण क्या है?

1.9 अथ संहिता

आपस्तम्भ में वेद का लक्षण कहा है कि **मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्।** जहां मन्त्र तथा उनके प्रयोग निर्धारक ब्राह्मण होते हैं वह वेद हैं। उपोद्घातभाष्य में सायणाचार्य ने भी अनुरूप लक्षण कहा है – **'मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेदः'** इति। मन्त्र और संहिताभाग पर्याय है, सन्निकर्ष रूप धारण करता है या सम्यक् रूप से धारण करते है मन्त्रों को जिसमें ऐसा यहां विग्रह में सम्पूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः इति धातु से क्त प्रत्यय और स्त्रीलिंग में टाप प्रत्यय होने पर संहिताशब्द निष्पन्न होता है। निष्कर्ष यह है कि मन्त्र जहां होते हैं वह संहिताभाग है।

शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदान्ते शाखिनोऽभवन् इस भागवत वचन से गुरु–शिष्य–प्रशिष्य–परम्परा से वेद की रक्षा से देशकालव्यद्रिभेद से वेदपाठ की विभिन्नता से अनेक शाखा हो गई। किस वेद में कितनी शाखा है इस विषय में महाभाष्यकार पतञ्जलि का वचन सुप्रसिद्ध है –

''एकविंशतिधा बाहवृच्यम् सहस्रवर्त्मा सामवेदः।
एकशतमधवर्युशाखाः नवधाथर्वणो मतः।'' इति।

ऋग्वेद की एकविंशति शाखा है, शाखा विषय में विद्वानों में मतभेद होता ही है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने तो इसकी पञ्चदश शाखा प्रतिपादित की है। ऋक्संहिता की प्रसिद्ध पंच शाखा

टिप्पणी

है - शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन। सामवेद की हजार शाखा थी परन्तु अब केवल तीन शाखा प्राप्त होती है - कौथुमी राणायणीय जैमिनीय।

यजुर्वेद की सौ शाखा थी। कृष्णयजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा है तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, कपिष्ठल और शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी, माध्यन्दिनी, काण्व शाखा प्रसिद्ध है।

अथर्ववेद की नौ शाखा थी। अब दो शाखा प्राप्त होती है शौनक, पिप्पलाद।

1.10 अथ ब्राह्मण

ब्राह्मण शब्द का विविध अर्थ है उनमे ब्राह्मण भी है। **''तस्माद् वेदमधीते तद्वेद वा'** ऐसा विग्रह होने पर **''तदधीते तद्वेद''** इस सूत्र के द्वारा ब्रह्मन् शब्द से अण्प्रत्यय करने प्र ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति हुई। अथवा ब्रह्म ही ब्राह्मण है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि **'ब्रह्म वै ब्राह्मणः'** इति। दयानन्द सरस्वती मत में पुरोहित ही ब्राह्मण है, उनके द्वारा निष्पाद्य यागादि विधि जहां उपदिष्ट है वो ब्राह्मण है। उन्होंने कहा है - **''चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि''** इति। जैमिनि ने तो 'शेषे ब्राह्मणशब्दः' ऐसा ब्राह्मणलक्षण कहा है। मन्त्रांश को छोडकर वेद का अवशिष्ट भाग ब्राह्मण है। आपस्तम्भ में कहा है 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि' इति। यागादि क्रिया विधि जहां वर्णित वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणों में वर्णन करने वाले विषय षट् है - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, प्राकृति।

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि या शांख्यायन दो ब्राह्मण है। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रसिद्ध है पंञ्चविंश षड्विंश छान्दोग्यं, जैमिनीय तलवकार या सामविधान, आर्षेयः, वंश, देवताध्यायन इति। शुक्लयजुर्वेद का शतपथब्राह्मण, कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ नामक एक ही ब्राह्मण है।

1.11 अथ आरण्यक

आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट होते हैं। आरण्यकों में अध्यात्म तत्त्व आलोकित हैं। और निष्काम भाव से यागादि कर्म भी वहाँ उपदिष्ट हैं। अरण्य में पढ़े जाने के कारण इसका आरण्यक नाम रखा गया। तथा अरण्य शब्द से वुञ्प्रत्यय करने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है।

आरण्यक के विषय में भाष्यकार सायण ने कहा कि-

'अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।
अरण्ये तदधयेतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।'

ऋग्वेद के दो आरण्यक प्राप्त होते हैं ऐतरेय और सांख्यायन। सामवेद का आरण्यक

टिप्पणी

छान्दोग्यारण्यक है। शुक्लयजुर्वेद का आरण्यक वृहदारण्यक है। कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीय और मैत्रायणीय दो आरण्यक हैं, अथर्ववेद का एक भी आरण्यक नहीं है।

1.12 अथ उपनिषद्

आरण्यक का ही सारभूत उपनिषद् हैं। आरण्यक में प्रारम्भ की गई अध्यात्म तत्त्व की आलोचना उपनिषदों में ही परम् स्फूर्ति को प्राप्त होती है तथा समाप्त होती है। वेद के अन्तिम लक्ष्य होने से ये उपनिषद् वेदान्त कहलाते हैं। (वेद का अन्त वेदान्त, अन्त शब्द के यहाँ दो अर्थ हैं सारभाग तथा अन्तिम अंश।) उप+नि+पूर्वक विशारण गत्यवसादनार्थक सद् धातु से णिच् तथा क्विप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति होती है ऐसा शङ्कराचार्य ने कहा। उप् शब्द का सामीप्य तथा सत्व अर्थ है तथा नि शब्द निश्चयार्थक है उससे शीघ्र व निश्चय संसारी जनों को संसार सारमति प्राप्त होती है शिथिल होती है 'परमश्रेय रूप प्रत्यगात्मा को प्राप्त कराता है या ज्ञान कराता है, दुःख जन्मादि मूल अज्ञान को हटाता है या नाश करता है उपनिषत् के पद ज्ञान द्वारा। उपनिषद्विद्या ब्रह्मविद्या या रहस्यविद्या होती है। ऋग्वेद के उपनिषद ऐतरेय और शांखायन, सामवेद के छान्दोग्य केनोपनिषद्, कृष्ण यजुर्वेद के कठ-श्वेताश्वतर-महानारायण उपनिषद है- शुक्ल यजुर्वेद ईश और वृहदारण्यक, अथर्ववेद के प्रश्न मुण्डक, माण्डुक्य, उपनिषद् प्रधानरूप से उपलब्ध होते है। शङ्कराचार्य ने दश प्रसिद्ध उपनिषदों पर भाष्य लिखा है- जैसे -

'ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डुक्यतैत्तिरिः।
ऐतरेयच्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥'

कुछ विद्वान कहते है कि श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य भी शङ्कराचार्य ने किया। किसी अन्य ने नहीं।

यह वेदज्ञान ब्रह्म ने भारद्वाज के लिए प्रदान किया, भारद्वाज से अंङ्गिरस ने, आङ्गिरस से शौनक ऋषि ने एवं उत्तरोत्तरकाल में बहूत ऋषियों ने यह ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु कालक्रम में आयु और बुद्धि के ह्रास से एक व्यक्ति समग्रवेद को गंभीरतया पढ़ने और पढ़ाने में असमर्थ था अतः व्यास महर्षि ने वेदों को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों में (ऋग्वेद जैमिनि को, सामवेद वैशम्पायन, यजुर्वेद और अथर्ववेद सुमन्तु को) वेद रक्षण कार्य प्रदान किया। भागवत में कहा भी गया है -

''पराशरात् सत्यावत्यामंशांशकलया विभुः।
अवतीर्णो महाभागो वेदं चक्रे चतुर्विधाम्॥'' इति।

पाठगत प्रश्न 1.6

65. आपस्तम्भ में वेद लक्षण क्या है ?

टिप्पणी

66. महाभाष्य कार पतंजलि के मत में ऋग्वेद की कितनी शाखाएं हैं ?
67. सामवेद की एक शाखा का नाम क्या है ?
68. माध्यन्दिनी शाखा किस वेद की है ?
69. अथर्ववेद की कितनी शाखायें थीं?
70. आपस्तम्भ में कहा गया ब्राह्मण लक्षण क्या है ?
71. ब्राह्मणों में वर्णित छह विषय कौन से हैं?
72. शतपथ ब्राह्मण किस वेद का है ?
73. अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम क्या है?
74. आरण्यक शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न है ?
75. ऋग्वेद के दो आरण्यकों के नाम क्या है?
76. उपनिषद् शब्द का दूसरा नाम क्या है ?
77. उपनिषद् में सद् धातु किस अर्थ में है ?
78. कठोपनिषद् किस वेद में है?
79. महर्षि वेदव्यास ने सामवेद का उपदेश किसको दिया ?

1.14 ऋग्वेद

''ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक्'' इति ऋच् स्तुतौ से क्विप् प्रत्यय से यह शब्द निष्पन्न हुआ। स्तुतिपरक होने से ऋक् है। पूर्व मीमांसाकार जैमिनि के मत में जहाँ अर्थानुसार पाद व्यवस्था विहित है वह ऋक् होता है। उन्होंने कहा भी है कि – **''तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था''** ऋक् का स्वरूप तैत्तिरीयोपनिषद् में भी वर्णित हैं – **''यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद्दृढमिति''।** ऋक्संहिता के विभाग प्रकार दो प्रकार से विभक्त होते हैं- पहला तो इस प्रकार – मण्डल, अनुवाक, सूद्र, ऋक् इति। दूसरा-अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र। पहला प्रकार से ऋक्संहिता में दस (10) मण्डल, पिच्चासी (85) अनुवाका, एक हजार सत्रह (1017) सूक्त, दस हजार एक सौ छ (10600) ऋचाएं है- ऋग्वेद की शाकल बाष्कल शाखा के मध्य शाकल शाखा में बालखिल्यर्षि दृष्ट ग्यारह बालखिल्य सूक्त नहीं गिने गये है, उनको छोड़कर ऋक्संहिता में एक हजार सत्रह (1017) सूक्त है- दूसरा विभागप्रकार से ऋक्संहिता में आठ (8) अष्टक, चौंसठ (64) अध्याय, दो हजार छः (2006) वर्ग है। सम्पूर्ण ऋक्संहिता में चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर हैं।

1.15 अथ सामवेद

स्यति श्रवणमात्रेण पापानि नाशयति इति, स्यति यहां गानसुधा सेचन द्वारा यज्ञानुष्ठान कर्ता के कर्मानुष्ठान से उत्पन्न पाप नष्ट होते है। विग्रह अर्थ में **''षोऽन्तकर्मणि''** इस धातु से कर्ता अर्थ में मणिन् प्रत्यय से सामशब्द की निष्पत्ति होती है। कुछ तो **''सामसान्त्वप्रयोगे''** इति चुरादिगणीय धातु से भी सामशब्दोत्पत्ति मानते हैं। **उनके मत में सामयति गूढतत्त्वं गीतद्वारा वेदप्रतिपत्तारं बोधायित्वा तं सान्त्वयति इति साम।** ऋचाओं में गीतोचित स्वरों के होने से साम उत्पन्न होता है बृहदारण्यक में कहा गया है। **सा (ऋक्) च अमः (गीतोचितस्वरः) च तत्साम्नः सामत्वम्** जैमिनि द्वारा ऋग्वेद के मन्त्रों में जो ऋचाएं गीत रूप में उपस्थापन योग्य है वो सामवेद द्वारा कही गई है ऐसा वर्णन प्रतिपादित किया गया है। अतः उसका निष्कर्ष भूत लक्षण होता है **'गीतिषु सामाख्या'** इति। सायणाचार्य के द्वारा भी सामवेद भाष्य भूमिका में कहा गया है - **'गीयमानस्य साम्नः आश्रयभूता ऋचः सामवेदे समाम्नायन्ते'** इति। सामवेद संहिता में अठारह सौ दस (1810) मन्त्र विद्यमान है। इनमें 85 तो केवल अपने बचे हुए ऋग्वेद से लिए गये है। कौथुमी शाखा के मत में सामवेद संहिता पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद से दो प्रकार है। यहाँ प्रथम पूर्वार्चिक प्रपाठकों द्वारा प्रपाठक दशती में विभक्त है। प्रत्येक दशती में दश मन्त्र है - इसप्रकार सम्पूर्ण सामसंहिता में पूर्वार्चिक में पांच सौ पच्चासी (585) मन्त्र है। इसी प्रकार उत्तरार्चिक में चार सौ (400) स्तोत्र है। और प्रत्येक स्तोत्र में तीन या चार ऋचाएं है। यह सामगान चार प्रकार से विभक्त है -ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, और ऊह्यगान।

1.16 अथ यजुर्वेद

यज्यतेऽस्मिन् इति इस विग्रह पूर्वक यज् देव पूजा सङ्गति करण दानेषु इस धातू से उसि-प्रत्यय करने पर यजु शब्द निष्पन्न होता है। यजुर्वेद के मन्त्र देवों की आहुतिपरक हैं, जिन मन्त्रों में अक्षरों की संख्या नियत रूप से विद्यमान न हो वे यजुर्मन्त्र कहलाते हैं। कहा भी गया है- **''अनियताक्षरावसानो यजुः''** **''गद्यात्मको यजुः''।** जैमिनि ने तो ऋग्वेद के मन्त्रों और सामवेद के मन्त्रों को छोड़कर अवशिष्ट वेदमन्त्र यजु हैं ऐसा प्रतिपादित किया। तथा उसका लक्षण इसप्रकार किया- **''शेषे यजुश्शब्दः''**। यज्ञ के साथ सम्बद्ध यजुर्मन्त्रों का यजुर्त्व वायुपुराण में वर्णित है-

''यच्छिष्टञ्च यजुर्वेदे, तेन यज्ञमयुञ्त।
यजनाद्धि यजुर्वेद, इति शास्त्रस्य निर्णयः॥''

यजुर्वेद के दो भेद शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद हैं। सूर्य से प्राप्त होने तथा सात्विक होने के कारण एवं मन्त्र और ब्राह्मण के पृथक् प्रयोग होने से शुक्लत्व। उद्गीर्य के तामसिकत्व के कारण तथा मन्त्र एवं ब्राह्मण के मिश्रित होने से कृष्णत्व। शुक्लयजुर्वेद के माध्यन्दिनशाखा

टिप्पणी

में चालीस अध्याय (40) एक सौ तीन अनुवाक (303) तथा उन्नीस सौ पचहत्तर (1975) कण्डिका हैं। काण्व शाखा में तो चालीस अध्याय (40) तीन सौ अट्ठाईस (328) अनुवाक और दो हजार तीन (2003) मन्त्र हैं। कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गततैत्तिरीय शाखा में सात (7) काण्ड, चवालीस (44) प्रपाठक (प्रश्न) छह सौ इक्यावन (651) अनुवाक हैं।

1.17 अथ अथर्ववेद

''आनन्तर्ये परब्रह्म गमयति प्रापयतीति वा'' विग्रह में अथ पूर्वक ''ऋ गतिप्रापणयो:'' धातु से वनिप्प्रत्यय करने पर अथर्व शब्द की उत्पत्ति होती है। जल्दी ही परब्रह्म की प्राप्ति जिससे होती है वह अथर्व होता है।

अथर्ववेद में बीस (20) कण्डिका, अड़तीस (38) प्रपाठक, नब्बे (90) अनुवाक्, सात सौ इक्कत्तिस (731) सूक्त तथा प्राय: छह हजार मन्त्र अथर्वेद में हैं।

पाठगत प्रश्न 1.7

80. ऋक्-शब्द का निर्वचन क्या है?
81. ऋक्संहिता के विभाग के दो प्रकार कौन से हैं?
82. समग्र ऋक्संहिता में कितने अक्षर हैं?
83. साम शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
84. सामवेद का लक्षण सायणाचार्य के द्वारा क्या किया गया?
85. सामवेद में स्वयं के कितने मन्त्र हैं?
86. सामगान कितने प्रकार से विभक्त है, और उनका नाम बताओ?
87. देवों के आहुति परक मन्त्र कौन से हैं?
88. यजुर्वेद के दो भेद कौन से हैं?
89. अथर्व शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
90. अथर्व वेद में कितनी कण्डिका हैं?

1.18 वैदिक स्वर

सभी अक्षर स्वर और व्यञ्जन भेद से दो प्रकार से विभक्त हैं। स्वयं राजन्ते इति स्वरा:।

टिप्पणी

अर्थात् इनके उच्चारण में अन्य वर्ण की सहायता अनावश्यक है। इन स्वरों के उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से तीन धर्म हैं। जिस स्वर का उदात धर्म होता है वह स्वर उदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का अनुदात्त धर्म होता है वह स्वर अनुदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का स्वरित धर्म है वह स्वर स्वरित स्वर होता है। यह सारा स्वर प्रपञ्च शिक्षा ग्रन्थ में विस्तरशः वर्णित है। पाणिनीय तन्त्र में स्वर का दूसरा नाम अच् है।

उदात्त और अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म जिस स्वर में समाहित होते हैं वह स्वर स्वरित संज्ञक है। जिस स्वर में उदात्त अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म मिला होता है वह स्वर संज्ञी है। स्वरित उसकी संज्ञा है। स्वर का ज्ञान स्वर के उच्चारण स्थानों से जानना चाहिए।

वर्णो के उच्चारण का स्थान

वर्णों के उच्चारण के लिए मुख के विविध स्थान उपयोग में आते हैं। वे स्थान आठ है। यहाँ पाँच स्थान ही बताए गये हैं।

गले में या ग्रीवा भाग के सम्मुख में उन्नत भाग होता है। वह ठोड़ी के निचले भाग में होती है। उसका नाम काकलक है। उसी को लोक में कण्ठमणि कहते है। काकलक से प्रारम्भ होकर होठ तक पञ्च स्थान उच्चारण के लिए ग्रहण किये जाते है। वे इस प्रकार है - (1) कण्ठ (2) मूर्धा (3) तालु (4) दन्त (5) औष्ठ इति।

अवर्ण के उच्चारण के लिए श्वास नलिका का आकुञ्चन किया जाता है। नलिका का जो अंश आकुञ्चित होता है उसका नाम कण्ठ है। मुख विवर के उपरि भाग में गोलाकार उन्नततम स्थान मूर्धा होता है। वहां से लेकर दन्त पर्यन्त विस्तीर्ण भाग का जो मध्य बिन्दु है वह तालु कहलाता है। दन्त दस प्रसिद्ध है। और दो होठ।

उदात्त कौन होता है -

कण्ठ भाग जिनके उच्चारण के लिए उपयोगी होता है उसके दो भाग करने चाहिए। ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। पाणिनी सूत्र हैं - उच्चौरुदात्तः।

यहाँ उच्चै इस शब्द का अर्थ - ऊर्ध्व भाग में। उच्चै का अर्थ यहाँ उच्च या तीव्र ध्वनि नहीं है। कण्ठ के ऊर्ध्व भाग से प्रयास करने से जो स्वर उत्पन्न होता है वह उदात्त कहलाता है।

यथा कण्ठ के भाग मानते हैं जैसे ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। वैसे तालु के, मूर्धा के, दन्त के, ओष्ठ के भी भाग मानने चाहिए।

अनुदात्त कौन होता है -

अनुदात्त संज्ञा विधायक पाणिनीय सूत्र होता है - नीचैरनुदात्तः। सूत्र में स्थित नीचै शब्द का अर्थ होता है - अधोभाग। नीचै अर्थ यहाँ निम्न या धीमी ध्वनि नहीं है। कण्ठ के अधोभाग में प्रयास या बल से जो स्वर उत्पन्न होता है वह अनुदात्त कहलाता है।

टिप्पणी

स्वरित कौन होता है –

समाहार: स्वरित:– ये पाणिनी सूत्र है। उदात्त स्वर का धर्म उदात्त है। अनुदात्त स्वर का धर्म अनुदात्त है। जिस स्वर में उदात और अनुदात्त दोनों होते है वह स्वर स्वरित स्वर कहलाता है। अत: स्वरित के उच्चारण में कण्ठादी ऊर्ध्वभाग और अधोभाग का भी ग्रहण होता है।

स्वरिते उदात्तत्वस्य अनुदात्तत्वस्य च विभाग: –

स्वरित के किस भाग मे व उदात्त और किस भाग में अनुदात्त है ये जानना जरुरी है। स्वरित स्वर में पूर्वार्ध भाग उदात्त होता है। उत्तरार्ध भाग अनुदात्त होता है। स्वरित स्वर से परे यदि अन्य कोई उदात्त या स्वरित स्वर हो तो इसके अनुदात्त भाग का उच्चारण अनुदात्त ही होता है। यदि इस स्वरित स्वर से पर में अनुदात्त स्वर हो तो स्वरित का जो अनुदात्त भाग उसका उदात्त के समान उच्चारण होता है। अर्थात् उदात्त से भी ऊर्ध्व भाग से निष्पन्न होगा।

स्वरित से परे उदात्त या स्वरित स्थिति हो तो अनुदात्त भाग का अनुदात्त ही उच्चारण होता है।

स्वरित से परे अनुदात्त या प्रचय स्थिति होने पर अनुदात्त भाग का उदात्त से ज्यादा उच्चारण होता है।

प्रचय: एकश्रुति:

स्वरित स्वर के बाद अनुदात्त स्वर तथा उसके बाद उदात्त हो ऐसी जब स्थिति होती है तब उदात्त से पूर्व विद्यमान अनुदात्त एक अधोरेखा से चिह्नित होता है। उससे पूर्व् विद्यमान अनुदात्त स्वर चिह्न रहित होता है। उन्ही चिह्नहीन अनुदात्त स्वरों का नाम प्रचय या एक श्रुति है उदाहरण –अग्निमीळे पुरोहितंम् (ऋ.1.1.1)। उपं त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ. 1.1.7)। अप्रंयुतामेवयावो मतिं दा:। (ऋ.7.100.2)

अग्निमीळे पुरोहितंम् ये ऋग्वेद के अग्निसूक्त का प्रथम शब्दत्रय है। इस अग्निमीळे यहाँ अकार अनुदात्त है। इकार उदात्त है। ईकार स्वरित है। एकार प्रचय है। इसीलिए ही ईकार का जो उत्तरार्ध भाग उसका उदात्त उच्चारण होता है। व्यञ्जन के उदात्त नहीं होते है।

उप त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ.1.1.7) यहाँ उप का उकार उदात्त, पकार से परे अकार स्वरित होता है। दिवे यहाँ दकार से पर वाला इकार अनुदात्त है। 'त्वाग्ने' यहाँ सभी स्वर प्रचय है।

अप्रंयुतामेवयावो मतिं दा:। (ऋ.7.100.2) यहाँ अप्रं इसमें प्रथम अकार उदात्त है, द्वितीय अकार स्वरित है। मतिं यहाँ मकार से परवर्ती अकार अनुदात्त है। 'युतामेवयावो' यहां सभी स्वर प्रचय है।

टिप्पणी

पाणिनीय शास्त्रोक्त दिशा में कहे गये उदात्त-अनुदात्त-स्वरित- तीनों स्वरों का त्रिविध उच्चारण होता है। स्वर ज्ञान का विशेष स्थान है क्योंकि स्वर ज्ञान के विना मन्त्रोच्चारण काल में स्वर भेद होता है जिससे मंत्र का अर्थ भिन्न होता है। इस विषय में इन्द्रशत्रुः इति पद का उदाहरण दिया जाता है। इसीलिए कहा गया है पाणिनीयशिक्षा में -

''मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थम् आह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥''

इन्द्रशत्रुः इस शब्द में यदि इन्द्र का पूर्वपद आद्युदात्त है तो इस पद में बहुव्रीहि समास होता है। तब इस पद का अर्थ होता है - **इन्द्रः शत्रुः यस्य** इति। तब इसका अर्थ इसप्रकार होता है की **वृत्रः वर्धताम् यस्य शत्रुः इन्द्रः अस्ति** इति। अर्थात् जिसको मारने वाला इन्द्र है। शत्रु शब्द का अर्थ होता है - हनन कर्ता, और विनाशक। यदि पूर्वपद अन्तोदात्त होता है तो इस पद में तत्पुरुष समास का ज्ञान होता है। और फिर इसका विग्रह होगा **इन्द्रस्य शत्रुः** इति। उससे इस पद का अर्थ होता है इन्द्रस्य विनाशकः अर्थात इंद्र का विनाशक। इससे यह ज्ञान होता है की बिना स्वर ज्ञान के उच्चारित पद किस प्रकार भिन्न अर्थ प्रतिपादित करता है। उदात्तस्वर के उच्चारणार्थं कण्ठताल्वादि स्थानों की उत्कृष्टता होनी चाहिए। अनुदात्स्वर के उच्चारणार्थ अपकृष्टता चाहिए। स्वरितस्वर के उच्चारणार्थ उत्कृष्टता और अपकृष्टता सम्मेलन अपेक्षित है। इसका प्रमाण है उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः ये पाणिनीय सूत्र हैं। ऋग्वेद के प्रातिशाख्य ग्रन्थ में इन तीनों स्वरों का क्रम से आयाम, विश्रम्भ, आक्षेप, ये नामकरण विहित है।

1.18.1 स्वरांकन पद्धत्ति

संहिता में वाक्य को आश्रित करके स्वराङ्कन होता है। किन्तु इन सभी के साथ प्रत्येक पदों का भी पृथक् स्वर सिद्ध होता है। क्योंकि **अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्** इति पाणिनीय सूत्रानुसार एक ही पद में उदात्त स्वर दो नहीं हो सकते है। ऋग्वेद-शुक्लयजुर्वेद-तैत्तिरीयसंहिता-अथर्ववेद- तैत्तिरीय-ब्राह्मणानुसार उदात्ताक्षर से परे कोई भी चिह्न नहीं होता है, अनुदात्त स्वर को बताने के लिए अक्षर के अधौभाग में चिह्न होता है, अ इति उदाहरण। स्वरिताक्षर के ऊपर चिह्न होता है। अं इति उदाहरण।

मैत्रायणीसंहिता में और कुछ काठकसंहिता में उदात्ताक्षर के उपरिभाग में दण्डरेखा दी जाती है जैसे– उदाहरण प्रं तद्विष्णुः (मै.सं.1.29) चित्तिः स्रुक् (क्र.सं 9.8)। अथर्ववेद के पैप्पलाद संहिता में तो उदात्ताक्षर के नीचे चिह्न होता है। स्वरित स्वर के नीचे बिन्दु होता है। जैसे उदाहरण है- देवाघ्नाम् (अथर्व. पै. 2.30.1) यहां न के बाद अकार के उदात्त बोध के लिए बिन्दु दिया गया है। सामवेद में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित-स्वरों के लिए तो अक्षरों के ऊ अ^{1} अ^{2} अ^{3} ये चिह्न दिए जाते है।

शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्ताक्षर के नीचे रेखा है। यदि एक ही पद में अनेक उदात्त

टिप्पणी

स्वर होते है, तब अन्तिम के ही उदात्तस्वर अंकित होता है। सत्यमाज्यम् यहां सत्यम् के य के बाद वाले अकार, और आज्यम् यहां आकार दोनों भी उदात्त होते है।

पाठ का सार

वैदिक वाङ्मय के परिचय के लिए यह प्रथम पाठ है। यहां कुछ मुख्य प्रारम्भिक विषयों का वर्णन किया गया है। उनमें पहले वेद का वैशिष्ट्य और महिमा बताई गई है। उसके बाद वैदिक वाङ्मय की विभूति प्रदर्शित की गई है। वेदशब्द के अर्थों का विविध प्रकार से उपन्यास किया गया है। वेदशब्द के अनेक पर्याय है जिसका शास्त्रों में बाहुलता से प्रयोग मिलता है वे पर्याय भी वहां उल्लिखित है। वेद अपौरुषेय है। अपौरुषेय पद से क्या जानना चाहिए ये विचार भी यहां पाठ में है। वेद के विविध लक्षण हैं। विविध आचार्यकृत लक्षण भी यहां प्रस्तुत है।

वेदशब्द की पाँच धातुओं से निष्पत्ति होती है। ऋग्वेद सर्वप्राचीन है। संहिता-आरण्यक-ब्राह्मण-उपनिषद् भेद से प्रत्येक वेद चार प्रकार से विभक्त है। ऋग्वेद के विभाग प्रकार के भेद से मन्त्रादि संख्या दी गई है। बालखिल्यान सूक्तों का वर्णन भी मिलता है। शाखा भेद पाठ भेद में ऋगादि वेदों की मन्त्रादि संख्या दी गई है। यजुर्वेद के दो भेद प्राप्त होते है। सामवेद के अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद से ही गृहीत है। अथर्ववेद बहुत से वेदों में संयोजित होकर बना है एसा अनेक विद्वान मानते है।

वैदिक मन्त्रों में स्वर ज्ञान अनिवार्य है। अत: वैदिक स्वर कौन से है, उनका लक्षण क्या है, उनके प्रकार कौन से हैं, और भी स्वर की अर्थ निर्णय में और पुण्यार्जन में क्या विशिष्टता है। ये विषय भी यहा पाठ में समाविष्ट है।

पाठान्त प्रश्न

91. वेद के आधार पर टिप्पणी लिखो।
92. वेद लक्षण संक्षेप में लिखो।
93. वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय सामान्यरूप से बताओ।
94. वेद के विभूति विषय में लिखो।
95. वेदशब्द के अर्थ को स्पष्ट करो।
96. वेद का महत्त्व का प्रतिपादन करो।
97. दार्शनिक मत प्रतिष्ठापन से वेद के रचनाकाल विषय में लिखो।
98. वेद का लक्षण लिखो।

99. वेदशब्द के लक्षण के आधार पर व्युत्पत्ति का प्रतिपादन करो।

100. संहिता का प्रतिपादन करो।

101. ऋग्वेद वर्णन करो।

102. यजुर्वेद वर्णन करो।

103. वेद में कितने स्वर है और वे कौन से हैं।

104. वैदिक स्वर का सविस्तार परिचय दो।

105. प्रचय स्वर कैसे होता है?

106. स्वरित स्वर के उत्तरभाग का कब और किस प्रकार उच्चारण होता है ?

107. स्वर का प्रयोजन कैसे है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों का वैशिष्ट और महत्त्व

108. यदि द्विज वेद को बिना पढ़े अन्य कर्म करता है तो वह शूद्र माना गया है।

109. वैदिक जन ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होते है।

110. **'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥**
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥' इति

111. **'वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।**
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥' इति

112. ऋषियों के द्वारा।

113. मन्त्रद्रष्टा।

114. ऋष्यति पश्यति इति ऋषिः।

115. इनि प्रत्यय से।

116. 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्' इति पङ्क्ति।

117. मन्त्र रुप भाग और ब्राह्मण रूप भाग।

118. संहिता।

119. संहिता भाग का व्याख्या रुप।

टिप्पणी

120. तीन प्रकार से विभक्त, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् विभाग।

121. यज्ञस्वरूपप्रतिपादक।

122. अरण्य में पढ़े गये यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करने वाले भाग।

123. ब्रह्मस्वरूप के बोधक और मोक्ष साधन उपनिषद्।

124. ब्राह्मण भाग गृहस्थों के लिए उपयोगी, आरण्यक भाग वानप्रस्थ आश्रितों के लिए उपयोगी, उपनिषद् संन्यस्त या सन्यासियों के लिए उपयोगी।

वैदिक वाङ्मय

125. षड् वेदाङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदादि का बोध होता है।

126. वाङ्मयम् इस अर्थ में।

127. **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्'।** इति।

128. जिन से यागों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है और, देवता की स्तुति विधान जहाँ उल्लिखित है, मननात् मन्त्र कहा गया है।

129. यज्ञ का विविध क्रियाकलाप प्रतिपादिकग्रन्थ 'ब्राह्मणम्' संज्ञा के नाम से जाने जाते है।

130. वेद स्वरूपभेद से त्रिविध है - ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

131. जहां अर्थ के कारण पादव्यवस्था होती है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है।

132. जिस वेद में यज्ञ यागादि क्रिया कलापों के अनुरोध से मन्त्र का सन्निवेश है वह 'यजुर्वेद' है।

133. जहां गीतिरूप मन्त्र होते है वह उपासनाकाण्डपरक वेद 'सामवेद' है।

134. मन्त्र त्रिविध है अत एव वेदो को 'त्रयी' नाम से जानते है।

135. वेदव्यास ने इनकी रचना की।

136. तीन संहिता।

137. यह वैदिक वाङ्मय महान मौलिक और पुरातन है। अतः यहां हमारा अभिनिवेश होता है।

वैदिक वाङ्मय की विभूति

138. धर्म और दर्शन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य होता है।

139. दो काल में विभक्त।

140. हिन्दी-पंजाबी-बंगला-उडिया-गुजराती-मराठी-राजस्थानी-आसामी अनेक उत्तरभारतीयभाषा, दक्षिणभारत में भी तामिल-तेलगु-मलयालम-कन्नडादि आधुनिक् भाषा भी वैदिकवाङ्मय से अत्यधिक प्रभावित है।

141. अध्यात्म विषय वाली सनातनी जिज्ञासा वैदिकवाङ्मय में आलोचित हुई है।

वेदार्थ और पर्याय शब्द

142. 'विद्यन्ते धार्मादयः पुरुषार्थाः यैस्ते वेदाः' इति।

143. इष्ट्यप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः इति।

144. वेद पौरुषेय और नित्य है।

145. सांख्य-वेदान्त-मीमांसा।

146. वेत्ति, विचारणा, सत्ता, लाभश्च।

147. जानते है।

148. वेदोऽखिलधार्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

149. 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' इति।

150. इष्टप्राप्तेः अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति सः 'वेदः' इति।

151. आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सभी शब्द वेद शब्द के पर्याय है।

152. विद्-धातु।

153. सत्तार्थक-विद् धातु घञ्प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द।

154. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुददी में चुरादिप्रकरण में चार अर्थों में विद्-धातु का प्रयोग है। वे चार अर्थ है - सत्ता, ज्ञान, विचारण, प्राप्ति।

155. 'विदन्त्येभिः धर्मब्रङ्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेदः।'

156. 'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति।

157. वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी मानते है।

158. मन्त्रद्रष्टा इति।

159. ऋषिशब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सूत्र से इनिप्रत्यय से निष्पन्न है।

160. न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है।

टिप्पणी

161. मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते।

वेद का पौरुषेयत्व अपौरुषेयत्व विचार और , लक्षण

162. पौरुषेय।

163. अपौरुषेय।

164. वेदान्ति और सांख्य।

165. संहितापाठ।

166. जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादिशाखा शुक्लयजुर्वेद की प्रसिद्ध है।

167. वाजि नाम सूर्य की रश्मि का है, सनिशब्द धनवाची है।

168. गुणगान या स्तुति जिससे की जाए उसे ऋचा कहते है।

169. शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है।

170. अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।

171. तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्थाश इति।

संहितादि

172. मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधोयम् इति।

173. ऋग्वेद की छः शाखा है।

174. कौथुमीयशाखा।

175. शुक्लयजुर्वेद।

176. अथर्ववेद की नौ शाखा है।

177. कर्म में प्रेरित करने से ब्राह्मण कहलाते है।

178. विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, पराकृति।

179. शुक्लयजुर्वेद में।

180. गोपथब्राह्मण।

181. वुङ्प्रत्यय से।

182. ऋग्वेद के दो आरण्यक है ऐतरेय और सांख्यायन।

183. वेदान्त है।

184. विशारणगत्यवसादनार्थ के।

185. कृष्णयजुर्वेद में।

186. वैशम्पायन ऋषि के लिए।

ऋगादि वेद

187. ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक् इति

188. प्रथम रूप से - मण्डल, अनुवाक, सूक्त, ऋक्। द्वितीय रूप से - अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र।

189. चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर है।

190. षोऽन्तकर्मणि धातु से निष्पन्न।

191. ''गीतिषु सामाख्या'' इति।

192. पचहत्तर (75) मन्त्र है।

193. सामगान चार प्रकार से विभाजित है -ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, ऊह्यगान।

194. यजुर्वेद में मन्त्र है।

195. शुक्ल और कृष्ण।

196. ऋ-धातु से।

197. बीस (20)।

प्रथम अध्याय समाप्त